शिक्षा और जातिवाद

के व्यवसायिक और राजनैतिक पहलू

अमन मदान

पिछले लेख में हमने बात की थी कि किस तरह सजातीय विवाह (अंतः विवाह), और ऊंच-नीच की सांस्कृतिक मूल्यों और प्रथाओं ने भारत में जाति को रूप-आकार दिया है और किस तरह ये शिक्षा-व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। अब हम देखते हैं कि राजनीति और वर्ग-संरचना जाति से किस तरह संबद्ध हैं और यह संबंध किस तरह इस देश की शिक्षा के पटल पर उभर कर आता है।

यह तो जानी-मानी बात है कि जाति-व्यवस्था का पारिवारिक व्यवसायों से जुड़ाव है। अधिकतर जातियां अपनी सामूहिक पहचान को दर्शाते और व्याख्यायित करते हुए भूतकाल में अपने सामूहिक व्यवसाय का जिक्र करती हैं। मसलन, अग्रवाल शायद आपको बताएंगे कि वे परम्परागत तौर पर व्यापारी और साहूकार रहे हैं। अगर वे हरियाणा से होंगे तो उनमें से कुछ शायद यह भी बताएं कि शुरू में तो वे अग्रोहा के शासक और राजा थे लेकिन बाद में आजीविका के लिए व्यापार करने लग गए। विश्वकर्मा संभवतः बताएंगे कि वे लौहार और बढ़ई थे, रेड्डी कह सकते हैं कि वे किसान हुआ करते थे और अय्यर, पुरोहित- इत्यादी इत्यादि। पुरखों का व्यवसाय जाति की पहचान को परिभाषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस बात में भी इसकी अहम भूमिका रहती है कि लोग अपने बारे में क्या सोचना चाहते हैं, और इसके लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है कि भूतकाल की इन गतिविधियों के बारे में किया गया दावा सच्चा है या नहीं। भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी अमूमन पाए जाने वाले सामाजिक समूहों की उत्पत्ति से सम्बद्ध मिथक होते हैं, और इसमें महत्व की बात यह है कि इनमें कुछ विचारों पर बल दिया जाता है और कुछ गतिविधियों को अच्छा या बुरा प्रदर्शित किया जाता है। भारत के अधिकतर इलाकों में दलितों के मुख से यह सुना जाना आम बात है कि किसी समय पर वे राजा हुआ करते थे लेकिन धोखे और चालबाजी से उन्हें पराजित किया गया और भागने पर मजबूर किया गया तथा उन्हें मौजूदा व्यवसायों की ओर आने को बाध्य होना पड़ा। यह समाज में उनकी निम्न हैसियत के बारे में नाराजगी की अभिव्यक्ति है- और इस दावे की भी, कि असल में तो हम किसी से कम नहीं।

व्यवहार में देखें तो व्यवसायों, अर्थव्यवस्था और जाति के बीच का संबंध काफी जटिल रहा है। वर्ण-व्यवस्था के तहत सामान्य व्यावसायिक वर्गीकरण से तो यह कहीं अधिक जटिल है। उदाहरण के लिए, ब्राह्मण वर्ण से होने का दावा करने वाली जातियां, जिन्हें पुरोहित होना चाहिए था, कई जगह किसान और जमींदार रही हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में सबसे बड़े जमींदार अकसर ब्राह्मणों में से रहे हैं। इसी तरह पुणे के क्षेत्र में ब्राह्मण जमींदार, योद्धा और शासक रहे हैं। कृषि का काम लगभग सभी जातियों के लोग करते रहे हैं। योद्धा, दरबारी और राजा का सामाजिक उद्भव भी हर तरह का रहा है। उत्तरी भारत में थोड़ा-बहुत आक्रामक बल हासिल कर लेने वाले किसी भी समूह द्वारा राजपूत नाम ग्रहण कर लिया जाता है। और प्रभुत्व या संरक्षकों के खो जाने पर जो भी व्यवसाय मिल पाया, वे उसे अपनाते रहे हैं।

इन सब विविधताओं के बावजूद जाति, व्यवसायों और वर्ग में स्पष्ट परस्पर संबंध दिखाई देता है। यह केवल परम्परागत व्यवसायों में ही नहीं बल्कि मौजूदा काल में भी चला आया है। इस मामले में सही-सही, सटीक विन्यास (पैटर्न) तो एक राज्य से दूसरे में भिन्न हो जाता है (यानी सभी राज्यों में यह एक सा नहीं होगा)। इसलिए किसी एक राज्य को उदाहरण के तौर पर लें तो शायद इस बात को समझने में मदद मिले। तालिका-1 भारत के एक राज्य (मध्य प्रदेश) में प्रत्येक जाति के वर्ग-आधारित विश्लेषण को दर्शाती है (2011-12, 68वें एन.एस.एस. सर्वेक्षण से)। अनुसूचित जातियों में से केवल 5.5 प्रतिशत के आस-पास लोग हैं जो कार्यालयों में उच्च स्तर के वेतन भोगी तथा पेशेवर नौकरियों में या निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। इसके बरक्स अन्य के 24.1 प्रतिशत ऐसे ही उच्च पदों पर और उच्च दर्जे की नौकरियों में हैं। इस तरह की नौकरियों में सबसे कम प्रतिनिधित्व अनुसूचित जनजातियों का है जिनके केवल 1.7 प्रतिशत परिवार सामाजिक तौर पर इस जगह स्थित हैं। अगर हम सबसे गरीब और न्यूनतम लाभकारी व्यवसायों को देखें तो हम पाते हैं कि अनुसूचित जातियों के करीब 21.3 प्रतिशत परिवार मुख्य पेशे के तौर पर वनों में काम करना या शिकार करना या मछली पकड़ना या खेत-मजदूरी बताते हैं। इसके बरक्स अन्य वाले वर्ग से केवल 5.4 प्रतिशत परिवार इन पेशों में होने के बारे में बताते हैं। यानी एक व्यक्ति का किसी विशेष जाति में जन्म होना कुछ हद तक इस बात को प्रभावित करता दिखाई देता है कि वह किस तरह के व्यवसायों में जा सकता है।

तालिका 1 : 68वां राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे (2011-2012)

मध्य प्रदेश में प्रत्येक जाति समूह के भीतर पेशेगत स्थिति के आंकड़े (प्रतिशत में				
विभिन्न पेशे	एस.टी.	एस.सी.	ओ.बी.सी.	अन्य
मालिक, मैनेजर, चुने गए प्रतिनिधि, पेशेवर लोग, प्रोफेसर	1.7	5.5	9.3	24.1
निचले पायदान पर मौजूद शिक्षित मजदूर, शिक्षक, क्लर्क, नर्स, तकनीकी सहायक, ज्योतिषि	3.9	2.8	3.6	11.5
अकुशल मजदूरः दुकान पर सहायक, हाउसकीपिंग में लगे लोग, रेस्टोरेंटों में काम करने वाले, सुरक्षा सेवाएं देने वाले, गलियों में सामान बेचने वाले, घरेलू नौकर, मैनेजर, कुली	12.8	25.6	15.7	15.9
ऐसे किसान जिनके पास 2 हेक्टेयर से कम जमीन है	28.1	10.6	19.2	9.8
ऐसे किसान जिनके पास 2 से 4 हेक्टेयर तक जमीन है	8.2	7.1	14.0	14.6
ऐसे किसान जिनके पास 4 हेक्टेयर से ज्यादा जमीन है	2.1	1.4	7.7	9.7
पशु पालन व खेती	0.0	0.3	1.6	0.1
वनों में काम करने वाले मजदूर, मछुआरे, शिकारी और खेतीहर मजदूर	32.4	21.3	12.5	5.4
कुशल मजदूर, दस्तकार, मशीन संचालक, विभिन्न साधनों के ड्राइवर	10.8	25.5	16.4	9.0
बेरोजगार, अज्ञात	0.0	0.1	0.0	0.0
कुल	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**

लेकिन इसी के साथ-साथ हमें जाति और वर्ग के बीच के संबंध के बारे में कोई एक ही तरह की, सामान्यीकृत राय बना लेने के बारे में सावधान रहना चाहिए। जाति और उच्च दर्जे के व्यवसायों के बीच के संबंध को लेकर कई अपवाद भी हैं। उदाहरण के लिए, जबकि 'अन्य' में सबसे अधिक उच्च-पदस्थ परिवार हैं, मध्य प्रदेश में इन्हीं जातियों के 21.3 प्रतिशत ऐसे भी हैं जो सीढ़ी के सबसे नीचे के पायदान पर हैं यानी अकुशल शहरी मजदूर, वनों में काम करने वाले मजदूर, खेतीहर मजदूर आदि। वर्ग तथा सरकार की व्यापक जातिगत श्रेणियों के बीच के संबंध को खुले-लचीले रूप में देखा जाना चाहिए।

बच्चों द्वारा अन्ततः इख्तियार किए गए पेशों को जाति कैसे प्रभावित करती है

अगर परिवार की जाति और उसके व्यवसाय के बीच ढीला-ढाला किन्तु वास्तविक संबंध है, तो सवाल पूछा जा सकता है कि यह संबंध बरकरार कैसे रहता है? हममें से बहुत लोग इस बात में भी रुचि ले सकते हैं कि यह संबंध कैसे समाप्त किया जाए ताकि बच्चे उस सबकी अभिलाषा करने के लिए स्वतंत्र हों जो उन्हें प्रेरित-उत्साहित करता है।

ऐसे कई तरीके हैं जिनके माध्यम से जाति-व्यवस्था उन व्यवसायों और उस सामाजिक वर्ग को प्रभावित करती है जिनमें एक बच्ची बड़ी होती है। उदाहरण के लिए खेत-मजदूरों के उस समूह को ही लीजिए जिसे मैं जानता था, जो एक ही जाति से थे, और मध्य-प्रदेश के एक गांव में रहते थे। शिक्षा के बारे में उनके अनुभव और टिप्पणियां थे कि प्राथमिक शिक्षा की बात तो ठीक है, लेकिन शिक्षा के लिए कठिन परिश्रम करने और कॉलेज जाने से कुछ हासिल नहीं होता। गांव के सबसे बड़े किसान (जो स्वयं पास के एक नगर में रहता था) के बच्चे ही थे जो पास के एक शहर के बढ़िया स्कूल में पढ़ पाए थे और फिर जीवन में भी सफल हुए लगते हैं। खेतीहर मजदूरों की आपसी नातेदारियों और शादी के संबंधों में उनमें से कोई भी ऐसा न था जिसे स्कूल जाने से इतना भी लाभ हुआ हो कि कोई वेतनभोगी नौकरी ही मिल गई हो। मुझ जैसे या स्थानीय राजकीय स्कूल के अध्यापक जैसे सब उदाहरण कहीं और से थे। यथार्थ के इस अनुभव के आधार पर उन्होंने तय कर लिया था कि उनके बच्चों शिक्षा से कुछ पाने की कम ही आशा थी। नतीजा यह कि वे अपने बच्चों को मेहनत से पढ़ने के लिए प्रेरित नहीं करते थे, न ही इसमें सहायक होते थे या इस पर कोई बल देते थे। बच्चों के पास भी कोई आदर्श उदाहरण नहीं था जिसे देख कर वे प्रेरित हो पाते और उस जैसा बनने की कोशिश करते। इस सामाजिक अनुभव के बनने की प्रक्रिया स्थानीय जाति, पड़ोस और मुहल्ले पर आधारित थी।

इसी बीच कुछ नौजवानों ने शहर जाकर निर्माण-उद्योग में काम करना शुरू किया। उनसे गांव में अपने हम उम्र भाई-बंधुओं को जानकारी मिलती रही कि वहां बहुत काम है और आमदनी भी अच्छी है। इसके चलते अन्य नौजवान भी शहरों में पहले से मौजूद अशिक्षित श्रमजीवियों में जा मिले। शिक्षा और काम में परिवार तथा कुटुम्ब के नेटवर्क के महत्व का अर्थ था कि जाति की पहचान निरन्तर अपना प्रभाव दिखा रही थी। इस प्रकार विकास के साथ व्यवसायों में आ रहे बदलावों के बावजूद व्यवसाय पर जाति के प्रभावों का एक व्यापक रवैया दिखाई देता है। जातीय पहचान की छाप वर्ग में भी आ जाती है और इस बात पर सजातीय विवाह का विशेष तौर से महत्वपूर्ण प्रभाव है।

जाति वर्ण से भी बढ़कर है, वह अन्तःविवाह तथा जातीय पहचान के कई पीढ़ियों में फैले निरन्तर सिलसिलों के लिए अधिक महत्व रखती है। बर्नर्ड एस. कोह्न (1980) सरीखे कई समाजविज्ञानियों, मानवविज्ञानियों का कहना है कि अन्तःविवाह-संबद्ध जाति से भी अधिक कुल, बिरादरी या किसी विशेष क्षेत्र का स्थानीय भाईचारा जाति की प्रभावी इकाई है। आमने-सामने के रू-ब-रू संबंधों का अस्तित्व रिश्तों के स्थानीय नेटवर्क में होता है। यहीं से वह प्रेम और स्नेह स्थापित होता है जो लोगों को एक-दूसरे की मदद और सहायता के लिए प्रेरित करता है। इस बंधन का अभाव ही उन लोगों से अलग रखता है जो इस समूह का हिस्सा नहीं हैं। सजातीयता की प्रथाएं यह सुनिश्चित कर देती हैं कि कम से कम सिद्धांत में तो रिश्तेदारों के इस नेटवर्क की बाहरी सीमाएं वही रहें जो जाति की हैं। लेकिन असल में यह सीमा-रेखा लचीली है और परस्पर मदद तथा सहायता की सबसे अधिक गहनता स्थानीय स्तरों पर होती है।

बच्ची शहर में जिस स्कूल में जाती है वह शिक्षण की बेहतर सुविधाओं से युक्त है या नहीं इस बात में परिवार की संपत्ति व वर्ग का बहुत योगदान होता है। चूंकि सम्पत्ति तो उत्तराधिकार के कानूनों के तहत अगली पीढ़ी को हस्तांतरित हो जाती है। फिर भी एक पूरी जाति के संदर्भ में सामान्यीकृत बात नहीं कही जा सकती है। कुल या बिरादरी की संपत्ति फौरी तौर पर बच्चे की शिक्षा को प्रभावित करती तो है। जिनके पास अधिक धरती, आर्थिक संपत्ति या उच्च शिक्षा की पारिवारिक संस्कृति है, उनके लिए शिक्षा हासिल करना व बेहतर प्रदर्शन करना अधिक आसान होगा। हालांकि किसी जाति की सब बिरादरियां समान रूप से अच्छा प्रदर्शन नहीं करेंगी, लेकिन ऐतिहासिक जातीय स्थितियों का इस बात पर तो असर पड़ता है कि कौन स्कूली शिक्षा में आगे रहता है और कौन पीछे रह जाता है।

जहां एक ओर विवाह तथा रिश्तेदारी की प्रथाएं इस संदर्भ में अपना योगदान देते हैं, वहीं जातीय पहचान की सांस्कृतिक मान्यताएं भी व्यवसाय संबंधी चयन को प्रभावित करती हैं। उच्च दर्जे का काम क्या है, बहुत मुमकिन है कि इससे संबद्ध सैद्धांतिक विचार को जातीय मूल्यों द्वारा गढ़ा जाए। आइ.आइ.टी. की संस्थाओं में शिक्षकों द्वारा अकसर कहा जाता है कि अपने खाली समय में विद्यार्थी कम्प्यूटर-लैब में तो भीड़ करते हैं मगर अधिकतर अन्य लैब खाली ही रहती हैं। ब्राह्मणवादी विचाधारा के मूल में यह है कि पुस्तकीय ज्ञान हस्तकौशल वाले ज्ञान से उच्चतर है। यह बात शायद यहां भी इसी रूप में अभिव्यक्त हो रही हो। जातीय पहचानें शायद स्वयं के बारे में एक ऐसी भावना के बनने में योगदान दे रही हैं जो विशेष तरह के रास्तों पर चलने को प्राथमिकता देती है।

जाति- विचारधारा या आर्थिक और राजनैतिक हित?

क्या जाति-व्यवस्था ब्राह्मणों और धर्म-ग्रंथों द्वारा प्रतिपादित सांस्कृतिक मान्यताओं से ही संचालित होती है? कई समाजविज्ञानियों का कहना है कि ब्राह्मणवादी विचारधारा केवल एक कारक है। जाति-व्यवस्था को रूप-आकार देने वाली अन्य सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक ताकतें भी हो सकती हैं (बेली, 2008)। यदि शिक्षा इसे परास्त करने की आशा रखती है तो उसे इन ताकतों से भी उलझना होगा।

पहले ज्यादातर विद्वान जातिवाद का मुख्य कारण सिर्फ ब्राह्मणवाद बताते थे। इस मान्यता के बनने के पीछे शायद यह था कि जातीवाद का अध्ययन कैसे शुरू हुआ। जाति-व्यवस्था को समझने के लिए बहुत-सा काम उस औपनिवेशिक काल में किया गया था, जब ब्रिटिश अधिकारी भारत के समाज को समझने की कोशिश कर रहे थे। उनका सामना जटिल समूहों और विशेष सामाजिक प्रथाओं वाले समाज से हो रहा था। उन्हें इन लोगों पर राज करना था, इसलिए इनके बारे में उन्होंने ऐसे व्यक्तियों से जानना शुरू किया जो ज्ञान की पुरानी परम्पराओं का हिस्सा थे और जो उन्हें ज्ञानवान लगते थे। इनमें पुजारी-पुरोहित और शास्त्रीय पाठों में रचे-बसे लोग शामिल थे। क्योंकि इनमें से अधिकतर ब्राह्मण ही थे (जैसा कि जिक्र कर चुके हैं, ब्राह्मणों के कई अन्य पेशे भी थे), उन द्वारा खींचा गया चित्र आम तौर पर एकतरफा और प्रचलित बातों पर आधारित था, न कि वास्तविकता पर। इस चित्रण में समाज को संचालित करने में ब्राह्मणों के महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने की प्रवृत्ति रहती थी।

कई समाजविज्ञानियों ने तर्क दिया है कि भारत में जाति का संचालन मूल रूप से उसे बढ़ावा देने वाले दार्शनिक या धार्मिक विचारों के लिए प्रतिबद्धता की वजह से ही नहीं है। लोग अपनी ही जाति में विवाह या अपने ही कुटुम्बियों की मदद या अपने मजदूरों के बच्चों को सहायता देने से इनकार इसलिए नहीं करते कि उनका धर्म उन्हें ऐसा करने को कहता है। यह एक कारक हो सकता है, लेकिन ऐसा करने का इससे भी बड़ा कारक यह है कि ऐसा करने से उन्हें सांसारिक लाभ मिलते हैं जो भावनात्मक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक हैं।

भारत के कई शहरों में हमें विशेष जातियों की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले होस्टल मिलते हैं। इनका उद्देश्य शहर में पढ़ने वाले इन जातियों के नवयुवकों के लिए एक सस्ता और सुरक्षित स्थान मुहैया करवाना है (हालांकि अब महिलाओं के लिए भी होस्टल खुलने लगे हैं)। विचारधारा-केंद्रित नजरिए से कहा जा सकता है कि होस्टल के संस्थापक ऐसा करने में जातीय संरचना को बनाए रखने की इच्छा रखने वाले धार्मिक लेखन से प्रेरित थे। लेकिन इसके अलावा सामान्य कारण भी हैं मसलन, संभवतः उनके स्वयं के रिश्तेदारों के लिए इन होस्टलों से मिलने वाली मदद; होस्टल स्थापित करने में सक्रिय भूमिका निभाने से कुटुम्बियों की नजरों में प्रतिष्ठा का बढ़ना और यह स्थानीय समुदाय में अपने नेतृत्व पर बल देने में भी सहायक हो सकता है। आवश्यक नहीं है कि इसका कोई संबंध अन्य समुदायों को को छोटा दिखाने और अपनी उच्चता दर्शाने से ही हो। इसके पीछे का विचार केवल इतने तक भी सीमित हो सकता है कि अपने लोगों की मदद करनी है। लेकिन कुछ ही जातियां होस्टल बना सकती हैं और अन्य नहीं, यह तथ्य निश्चित तौर पर हमें उनके बीच बढ़ती हुई असमानताओं की ओर ले जाता है।

परिवर्तित होती हुई अर्थव्यवस्था के साथ-साथ राजनीति और चुनावों ने जाति-व्यवस्था को आवश्यक तौर पर बर्बाद किए बिना उसके रूप-आकार को परिवर्तित करने में अहम भूमिका निभाई है (कोठारी 1970)। वर्ण-पहचान कई जगह

जातीय-पहचान के मुकाबले अधिक प्रमुख बन गई है। मदद के लिए अपील ब्राह्मण वर्ण या शूद्र वर्ण आदि के नाम पर की जाती है। हो सकता है कि ब्राह्मणों में विभिन्न जातियां परस्पर-विवाह न करें लेकिन ब्राह्मण-पहचान के इर्द-गिर्द इकट्ठा होने की अपील फिर भी उन्हें एक-दूसरे के समीप लाने में मदद करती है। राजनैतिक कार्यकर्ता अपनी मदद के लिए स्थानीय तथा क्षेत्रीय जातीय संपर्क-जालों का इस्तेमाल करते हैं और कई तरह के फायदे पहुंचाने का भी वादा करते हैं। यह केवल वैधानिक राजनीति के इर्द-गिर्द ही नहीं होता बल्कि विश्वविद्यालयी राजनीति, शहरों और अन्य स्थानों में भी होता है। इसने जाति के प्रत्यक्ष रूपों को स्थानीय से और व्यापक दायरों में फैला दिया है। चुनावों के समय जातीय पहचानों को चमका कर सबके सामने लाया जाता है। लोगों को उनके जातीय संबंधों की याद दिलाने के राजनैतिक लाभ काफी अधिक हो सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी जातीय राजनीति के कई लाभ हो सकते हैं जैसे, जातीय संस्थाओं के लिए अनुदान से लेकर जाति-विशेष के लोगों के लिए नौकरियां और पाठ्यपुस्तकों में उनके वास्तविक या मिथकीय पूर्वजों के बारे में खुश करने वाले किस्से।

जाति-व्यवस्था के लिए राजनैतिक या आर्थिक प्रोत्साहनों को ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर भी नहीं देखने चाहिए। ऐसे कई उदाहरण भी हैं, जब लोगों ने किसी विशेष उम्मीदवार के लिए वोट देते समय अन्य सामाजिक समूहों के साथ सांझे हितों के बारे में सोचा है। यह बड़ी जाति-संधियों में परिवर्तित हो सकता है उदाहरण के लिए, कुछ जगहों पर दलितों और ब्राह्मणों के बीच या अन्य स्थानों पर विभिन्न जातियों का अन्य पिछड़ी जातियों की पहचान में संघटित हो जाना आदि। जाति के अलावा अन्य पहचानों को सुदृढ़ करने में कुछ और कारक भी मददगार हो सकते हैं जैसे, नागरिक सुविधाओं से संबद्ध विषयों के इर्द-गिर्द चुनावी प्रचार और राजनीति, या राष्ट्र का विषय या क्षेत्रीय या भाषाई पहचान।

कुछ समाजविज्ञानियों (श्रीनिवास 2003, गुप्ता 2004) का मानना है जाति-व्यवस्था इस समय काफी बड़े परिवर्तन के मध्य है। उनका कहना है कि बदलते हुए व्यवसाय और वर्ग-संरचना तथा नए राजनैतिक गठबन्धन लोगों द्वारा उनकी जाति के इस्तेमाल के तरीके में परिवर्तन ला रहे हैं। जाति-व्यवस्था का स्वरूप आज वैसा नहीं है जैसा मसलन सौ साल पहले था। इसका यह अर्थ नहीं है कि कम ताकतवर जातियों का शोषण लुप्त हो गया है। लेकिन इसे अब समकालीन आर्थिक और राजनैतिक रुझानों के विश्लेषण के माध्यम से समझना होगा न कि धार्मिक ग्रंथों या बहुत पहले के समय की अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली के माध्यम से। आज के भारत में आर्थिक संपत्ति और कुछ हद तक राजनैतिक ताकत को भी हासिल करने के लिए शिक्षा-व्यवस्था पहले के मुकाबले बहुत महत्वपूर्ण होती चली जा रही है। वर्तमान भारत की शिक्षा का चरित्र इस बात को प्रभावित करता है कि जाति का प्रभाव उस पर बना रहेगा या नहीं।

अन्य धर्मों व अनुसूचित जनजातियों में जाति

अकसर सोचा जाता है कि जाति तो भारत के हिन्दुओं तक ही सीमित है। लेकिन यह तो जानी-मानी बात है कि जाति-व्यवस्था की विशेषताएं अन्य धर्मों को मानने वाले लोगों में भी पाई जाती हैं। हिन्दू धर्म के कुछ पहलू जाति के लिए सहायक हो सकते हैं, लेकिन इसके अपवाद भी हैं। उदाहरण के लिए भगवद्गीता के कुछ हिस्सों (अध्याय 1, श्लोक 42; अध्याय 4, श्लोक 13) की व्याख्या जाति-व्यवस्था को बल प्रदान करने के रूप में की जा सकती है, लेकिन कई विश्लेषकों और भक्ति-संतों ने उस व्याख्या का विरोध भी किया है। मुसलमानों, सिखों और ईसाइयों में धर्म-ग्रंथ इस बात पर बल देने में अधिक नियमित तौर पर स्थिर हैं कि ईश्वर के समक्ष सब बराबर हैं। इसके बावजूद हम पाते हैं कि भारत में तथा अन्यत्र इन धर्मों को मानने वालों ने भी श्रेणीबद्ध समूह बना लिए हैं जो परस्पर विवाह नहीं करते और व्यवसाय के लिहाज से जिनकी एक ढीली-सी पहचान है। मुसलमानों में अशराफ और अजलाफ में फर्क किया जाता है, उन्हें उच्च स्तरीय एवं निम्न समूह माना जाता है। इनमें से भी प्रत्येक के भीतर कई समूह हो सकते हैं जो अंतःविवाह करने को प्राथमिकता देते हों। इसके लिए शायद धर्म की ओर से उस तरह का आदेश या मंजूरी न हो जैसे कि जाति-व्यवस्था के हक में खड़े लोग हिन्दू धर्म के कुछ ग्रंथों के हवाला से दे सकते हैं। हो सकता है कि यह कम भी हो रहा हो, लेकिन इससे यह तो निकल कर आता है कि अकेला धर्म ही जाति को संचालित करने वाली ताकत नहीं है। सिखों में जट-सिख और मजहबी-सिख के बीच का अन्तर गुरुद्वारों पर नियंत्रण के लिए संघर्ष और एक-दूसरे के साथ विवाह के विरोध के रूप में जारी रहता है। यह इस बात के बावजूद है कि गुरु ग्रंथ साहिब में जाति का तीखा

विरोध है। इसी तरह ईसाइयों में विभिन्न हिन्दू जातियों से परिवर्तित होकर शामिल हुए लोगों के लिए अलग कब्रिस्तान की प्रथा को समाप्त करना बहुत ही कठिन रहा है। हो सकता है जाति-व्यवस्था धर्म में कुछ सूत्रों द्वारा प्रभावित हो, लेकिन इसे अन्य सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक कारकों से भी जीवन-शक्ति मिलती है।

अकसर समझा जाता है कि अनुसूचित जनजातियों में कोई जाति-व्यवस्था नहीं है। जिन्हें आज हम अनुसूचित जनजातियां कहते हैं, उनमें काफी विविधता है वे घुमन्तू-शिकारी भी हैं और स्थापित खेती करने वाले भी और औद्योगिक मजदूर भी। वे भारत के उन हिस्सों में आबाद हैं जिनमें पिछले कुछ समय तक जाति की विचारधारा की पहुंच नहीं बनी थी। वे आम तौर पर ऐसे क्षेत्रों से आते हैं जो बहुत लम्बे समय तक जातीय समाज द्वारा शासित या पूरी तरह नियन्त्रित नहीं थे। क्योंकि वे एक जातीय संरचना वाली समाज-व्यवस्था में पूरी तरह से एकीकृत नहीं हुए थे, अंग्रेजों द्वारा उन्हें ''जनजाति'' के नाम से एक समान सामाजिक-श्रेणी में एकमुश्त इकट्ठा कर दिया गया था। ये वे हो सकते हैं जिन्हें अधिक शक्तिशाली समूहों के अनुचित हस्तक्षेप के चलते पारिस्थितिक दृष्टि से प्रायद्वीपीय भारत के सबसे दरिद्र क्षेत्रों में रहने को मजबूर होना पड़ा था। या फिर वे हिमाचल या उत्तर-पूर्व जैसे इलाकों में, जहां ब्राह्मणवादी विचारधाराएं नहीं फैलीं, तुलनात्मक दृष्टि से अधिक धनी लोग हो सकते हैं। संविधान-निर्माताओं द्वारा तैयार एक सूची या अनुसूची में शामिल करते हुए इन्हें सामूहिक तौर पर अनुसूचित जनजातियों का नाम दिया गया।

कई जगह जनजातियों को जाति-व्यवस्था के तहत निचले स्तर पर जाति के रूप में माना जाने लगा है। उदाहरण के लिए, सच्चिदानन्द (1970) ने इस बारे में लिखा कि किस तरह बिहार की गोंड जनजाति के लोगों ने कई जाति-प्रथाओं का अनुसरण करना शुरू कर दिया था, जैसे कि कुछ समारोहों की अध्यक्षता के लिए ब्राह्मणों को आमंत्रित करना और जनेऊ धारण करना। स्वयं का वर्णन वर्णों की भाषा के माध्यम से करने और ब्राह्मणवादी विचारों के इस्तेमाल की धीरे-धीरे बढ़ती प्रवृत्ति पूरे देश में एक सामान्य रीति बन गई है। इनमें से कुछ लोग स्वयं के बारे में जातीय विचारों के माध्यम से सोचने का विरोध भी कर रहे हैं।

अनुसूचित जनजातियों की सूची में शामिल समुदायों के अधिकतर लोगों में एक साझा बात यह है कि वे उत्तर और दक्षिण भारत के शक्ति-केन्द्रों से बहुत दूर हैं। इसका अर्थ है कि वे आर्थिक प्रगति तथा स्कूलों और विश्वविद्यालयों तक पहुंच बना पाने वालों में सबसे पीछे रहते हैं। लेकिन उत्तर-पूर्व की अनुसूचित जनजातियां इस मामले में एक दिलचस्प अपवाद हैं। अपने क्षेत्रों में सबसे शक्तिशाली समूह होने के चलते वे धर्म-प्रचारकों तथा भारतीय राज्य द्वारा प्रचारित स्कूल-व्यवस्था से लाभ पाने वाले भी रहे हैं। लेकिन बाकी के भारत की शिक्षा-व्यवस्था में उनका प्रवेश अभी राजनैतिक और सांस्कृतिक कारणों से बहुत कम है और उसमें बेहतरी की बहुत गुंजाइश है।

जाति और शिक्षा

भारत में जाति-व्यवस्था के बारे में अब तक की गई चर्चा हमें उससे निपटने के तरीकों को बेहतर समझने में मदद करेगी। सबसे बड़ी समस्या है कि यह अब भी हमें गम्भीर असमानताओं और बेइंसाफियों की ओर ले जाती है। बात केवल पारिवारिक या समूह-पहचानों में भिन्नता की हो तो कोई आपत्ति न होगी। लेकिन जब ये अवसरों में भेद और सामाजिक पूर्वाग्रहों से संबद्ध हो जाती हैं तो जरूरत पैदा होती है कि समाज इनके विरुद्ध खड़ा हो। राज्य की गतिविधियां और शिक्षा-व्यवस्था की प्रकृति दोनों पर जाति का प्रभाव हैं। उदाहरण के लिए, पिछली चर्चा में सुझाया गया है कि बच्ची किसी अच्छे स्कूल में जा सकती है या नहीं इस निर्णय में कुटुम्बों के स्थानीय नेटवर्क महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि आस-पास कोई अच्छा स्कूल नहीं है तो कुटुम्ब का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है- जिनके संबंध दूर के शहर में हैं, जहां ऐसा स्कूल है, उन्हीं के बच्चे ऐसी शिक्षा-व्यवस्था से लाभ पा सकते हैं। यह भी अपने जातीय संबंधों को बनाए रखने और पोषित करने का एक कारण है। दूसरी ओर, यदि अच्छे स्कूल सबके लिए उपलब्ध हों तो जातीय नेटवर्क अपना आकर्षण खो देते हैं। यह बात विशेष तौर से तब सच्ची है जब स्कूल तुलनात्मक दृष्टि से ऐसे निष्पक्ष स्थान हों जहां सब सामाजिक पृष्ठभूमियों के बच्चे घुल-मिल सकते हों। ऐसे में स्कूल इस तरह के स्थान बन जाते हैं जहां नए सामाजिक नेटवर्क बनते हैं और आप जाति की सीमाओं के आर-पार दोस्त बनाते हैं।

भारत में शहरी मध्य-वर्गों का एक उदाहरण देना दिलचस्प होगा। इन्हें यह विश्वास करना पसन्द है कि वे जाति-व्यवस्था से ऊपर उठ चुके हैं। इनमें बहुत बड़ी संख्या ऐसे पारिवारिक समूहों से सम्बद्ध लोगों की है जो ब्रिटिश शिक्षा का लाभ उठाने वाले पहले समूहों में से थे। इनमें वे जातियां शामिल थीं जिनमें कई लोग ऐसे थे जिन्होंने ब्रिटिश समय काल से पहले के समय में अपनी आजीविका शिक्षा से हासिल की थी। ब्राह्मण, कायस्थ, अरोड़ा और बनिया जैसी व्यापारी जातियां आम तौर पर जमींदारों और राजाओं के लेखाकार और रिकॉर्ड रखने वाले लोग थे। अक्षर ज्ञान पाना और कलम तथा पुस्तकों के साथ काम करना, रोजगार तलाशने और अपने भविष्य को बेहतर बनाने की उनकी संस्कृति का हिस्सा थे। इसीलिए वे स्वयं को ब्रिटिश शिक्षा के अनुकूल बनाने वाले सबसे पहले लोगों में थे। आनुपातिक दृष्टि से देखें तो उच्च-शिक्षा से संबद्ध व्यवसायों में अभी भी ये जातियां बहुत अधिक संख्या में मौजूद हैं। व्यावहारिकता में वे अभी भी अंतःविवाह करते हो सकते हैं लेकिन उनसे यह सुना जाना भी आम बात है कि वे जाति-व्यवस्था की निन्दा करते हैं। मेहनत और व्यक्तिवाद के महत्व की एक व्यापक संस्कृति मौजूद है। मान्यता यह है कि आपको सवयं अपने जीवन का पथ बनाना है और अपने बच्चों को भी शिक्षा में अच्छे प्रदर्शन के लिए प्रेरित करना है।

जाति के अप्रासंगिक होने के उनके विश्वास के लिए दुर्भाग्य की बात यह है कि जाति के काम करने के तौर-तरीके को अगर अनदेखा किया जाता है तो यह शिक्षा में असमानता की जातीय रीतियों और सांचों के बने रहने की ओर ही ले जाता है। अगर केवल उच्च जातियों के लोग ही अपने बच्चों को मदद देने की स्थिति में हैं तो असमानता की व्यापक बुनावट में कोई बदलाव नहीं आता है। यह स्वीकारना शायद महत्वपूर्ण है कि कुछ छुपी हुई प्रणालियां हैं जो योग्यता के महत्व को नकारती हैं। इस स्वीकार से हमें मदद मिलेगी कि हम उन असरदार तरीकों की ओर ध्यान आकर्षित कर पाएं जिनसे हम अपने विचारों, शिक्षा और पेशों पर जाति की उत्पत्तियों की जकड़ को हटा पाएं।

निष्कर्ष की बात करें तो शिक्षा पर जाति-व्यवस्था के प्रभाव केवल उसकी सांस्कृतिक मान्यताओं, प्रथाओं और जाति की वजह से ही नहीं हैं बल्कि विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच आर्थिक, राजनैतिक और भौगोलिक असमानताओं की वजह से भी हैं। इनसे जातीय पहचानों की निरन्तर लामबन्दी को प्रोत्साहन मिलता है। यदि राज्य और अन्य एजेंसियों द्वारा स्कूल बेहतर किए जाएं और भौगोलिक परिस्थिति, पारिवारिक व्यवसाय व राजनैतिक ताकतों को दरकिनार करते हुए सबके लिए अच्छे स्कूल उपलब्ध करवाए जाएं, तो इन असमानताओं को बढ़ाने वाली कोशिशों के असर को कम किया जा सकता है और जाति को अप्रासंगिक बनाया जा सकता है। दूसरा, जाति-व्यवस्था के वैचारिक-सैद्धांतिक पक्ष पाठ्यचर्या और शिक्षकों व शिक्षा-व्यवस्था के तहत काम करने वाले अन्य लोगों के नजरियों को प्रभावित करते हैं। ऐसी विचारधाराओं के विरोध में निरन्तर संघर्ष आवश्यक हैं। तीसरे, यदि सजातीयता तथा जातीय संरचनाओं की वजह से सामाजिक ताने-बाने सीमित होते हैं, तो जाति घरेलू व स्कूल के बाहर के जीवन पर कम असर डालेगी और सामाजिक समूह के निवास स्थान एवं परस्पर अंतःक्रिया को आपस में मिलाने वाले सामाजिक हस्तक्षेप इस बात में सहायक होंगे कि बच्चे को मिलने वाले अवसर कर्म पर निर्भर हों न कि जन्म पर। ◆

लेखक परिचयः जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

भाषान्तर : रमणीक मोहन

संदर्भ

Bayly, S. (2008).*Caste, Society and Politics in India from the Eighteenth Century to the Modern Age*. Cambridge: Cambridge University Press.

Cohn, B. S. (1987). Notes on the History of the Study of Indian Society and Culture.In *An anthropologist among the historians and other essays* (pp. 136–171). Delhi; New York: Oxford University Press.

Gupta, D. (2005). Caste and Politics: Identity over System. *Annual Review of Anthropology*, *34*, 409–427.

Kothari, R. (1970). *Caste in Indian politics*. New Delhi: Orient Longman.

Sachchidananda. (1970). Tribe-Caste Continuum/ : A Case Study of the Gond in Bihar. *Anthropos*, *65*(5/6), 973–997.

Srinivas, M. N. (2003). An Obituary on Caste as a System.*Economic & Political Weekly*, *38*(5), 455–459.